International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 20-04-2019; Accepted: 24-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 40-44

रामचंद्र शुक्ल की आलोचक अंतर्दृष्टि और जायसी

डॉ. वंदना यादव
शोध छात्रा, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
हिन्दी साहित्य के इतिहास और आलोचना दोनों को व्यवस्था देना का कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि को देना चाहिए। जिनमे उनके आलोचनात्मक प्रतिमानों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लोकधर्म, विरूद्धों का सामंजस्य के साथ-साथ भक्तिकाल के संदर्भ में मानवीयता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी के रूप में देखना रहस्यवाद को नए संदर्भों में परखना, हिन्दी साहित्य को प्रस्थान बिन्दु मुहैया कराता है।

मुल शब्द : इतिहास, आलोचना दृष्टि, आलोचनात्मक प्रतिमानों, लोकधर्म, भक्तिकाल, मानवीयता।

प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आधुनिक हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष माने जाते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य के मूल्यांकन के लिए नए मानदंड निर्मित किए। अपने मानदण्डों को आधार बनाकर शुक्ल ने आलोचना के प्रतिमान स्थापित किए। साथ ही तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी तथा सूरदास जैसे महान कवियों का मूल्यांकन किया जिसके फलस्वरूप आलोचना का एक व्यवस्थित ढाँचा तैयार हुआ और यहीं से हिंदी आलोचना नए युग में प्रवेश करती दिखाई देती है।

इस क्रम में शुक्ल द्वारा की गई मध्यकालीन कवियों की व्यावहारिक आलोचना को हम देख सकते है क्योंकि उन्होंने जिस प्रकार से इन कवियों का मूल्यांकन किया है वह उनके आलोचना दृष्टि का परिचय ही प्रस्तुत करती है। वे इन कवियों के साहित्य के मूल उत्सों की बड़ी बारीकी से जाँच-पड़ताल करते दिखाई देते हैं।

यह अज्ञात नही है कि आचार्य शुक्ल ने अपनी प्रखर आलोचना-दृष्टि के बल पर 'जायसी' को हिंदी के शीर्ष कवियों समुतल्य स्थापित किया और यहाँ तक कहा कि जायसी तुलसी के बाद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि है। शुक्ल ने जायसी के रचना-संसार को 'जायसी ग्रंथावली' नाम से प्रकाशित करवाया। साथ ही उन्होंने उसमें एक लम्बी भूमिका भी लिखी।

हम देखते हैं कि जायसी को आचार्य शुक्ल ने मध्यकाल के महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में घोषित किया और यह भी अपनी भूमिका के माध्यम से बताया कि जायसी क्यों महत्त्वपूर्ण कवि हैं? साथ ही उनकी सीमाएँ क्या हैं? इस बात पर चर्चा करने से पहले हमें यह देखना चाहिए कि उनकी दृष्टि से आलोचना के प्रतिमान क्या हैं? उन्होंने अपने साहित्येतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के द्वितीय उत्थान में आलोचना को व्यवस्थित रूप देने के लिए कुछ निश्चित मानदंड निरुपित किये हैं जो निम्नलिखित हैं -

1. कृति में विन्यस्त वस्तु को व्यवस्थित रूप से सामने रखकर उसका विभिन्न दृष्टियों से स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना और उसके अंग-प्रत्यंग की विशेषताओं का अन्वेषण-विवेचना करना।
2. भावों की व्यवच्छेदात्मक व्याख्या करना।
3. कृति में उपस्थित सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक परिस्थितियों के लोक-भाव का मूल्यांकन करना।
4. इतिहास के परिवर्तनशील निकष पर कृति का परीक्षण करके प्रतिफल निकालना।
5. वस्तु साम्य के आधार पर अन्य रचनाओं से तुलना करना।
6. साहित्य की चली आती हुई जातीय परंपरा में कृति का स्थान निर्धारित करना।
7. रचनाकार के सर्जक व्यक्तित्व और उसकी अन्तः वृत्तियों का अनुसंधान करना।

हम देखते हैं कि जायसी के मूल्यांकन में उन्होंने इन मानदंडों का सफल प्रयोग किया है। लेकिन हमें यहाँ पर ध्यान रखना होगा कि समीक्षा के लिए शुक्ल जी द्वारा सुझाये गए उपर्युक्त सात सूत्र उनके समीक्षा-सिद्धांत के अंतिम सूत्र नहीं थे। उन्होंने समय-समय पर आलोचना के कई दूसरे उपादानों की भी चर्चा की। परंतु उपर्युक्त सात सूत्रों को ही उन्होंने विशेष महत्त्व दिया।''[1]

लोक-चिंता, लोक-धर्म, लोक-जीवन, लोक-हृदय, लोकादर्श आदि शुक्ल के जीवन-दर्शन के आधार शब्द हैं। इन्हीं के भीतर उनकी पूरी समीक्षा-दृष्टि अंगी रूप में विद्यमान हैं। यों भी कहा जा सकता है कि इसी केन्द्रीय चिंतन की शब्दावली से शुक्ल ने काव्य का समस्त विवेचन 'लोकधर्म' और 'लोकमंगल' की दृष्टि से किया है। अर्थात् शुक्ल की आलोचना के ये प्रतिमान हैं। अपने प्रिय कवियों चाहे तुलसी, जायसी तथा सूर हों, के मूल्यांकन में उनका मन वहीं रमा जहाँ पर उन्हें इन तत्त्वों का साक्षात्कार हुआ। इसीलिए तुलसी शुक्ल के आदर्श कवि हैं। वे मानते हैं कि तुलसी ने अपने काव्य में लोक-धर्म और लोक-मंगल का निर्वाह बहुत ही अच्छे ढंग से किया है। शुक्ल की आलोचना के मूल में लोक-मंगल की जड़ इतनी गहरी है कि उन्होंने चाहे काव्य की परिभाषा की हो, चाहे रचना-प्रक्रिया पर विचार किया हो अथवा किसी रचनाकार या रचना विशेष का मूल्यांकन किया हो, उनके सामने यह आदर्श सदा रहा है। यह उनकी प्रतिभा की क्षमता और सीमा दोनों का निर्देशन करने वाला तत्त्व है।[2]

---

[1] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आलोचना के नए मानदंड-भवदेव पाण्डेय, पृ. 169

[2] आलोचना अंक-73 सं. नामवर सिंह, लेख लोक मंगल और आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रघुवंश, पृ. 60

आचार्य शुक्ल मानते हैं कि कविता मनुष्य के हृदय का विस्तार करती है कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य के भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।''[3] इसलिए वे उन्हीं कविताओं या काव्य को महत्त्व देते हैं जो लोक-सामान्य के भाव-भूमि पर पहुँचाने में समर्थ हो। वहीं शुक्ल सच्चा कवि उसे कहते हैं जिस कवि में लोक-हृदय की पहचान करने की क्षमता हो। उन्होंने लिखा है कि सच्चा कवि वही है जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।''[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्ल की आलोचना-दृष्टि लोक जीवन के ठोस भूमि पर खड़ी है जिसमें लोक कल्याण का भाव मुख्य है। अगर जायसी के विषय में बात की जाए तो कहा जा सकता है कि शुक्ल का मन वहीं रमा है जहाँ पर जायसी ने लोक-धर्म का अच्छे से निर्वाह किया है। नागमती वियोग खंड उन्हें इसीलिए अपनी ओर आकर्षित करता है क्योंकि यहाँ रानी नागमती अपना रानीपन भूलकर सामान्य नारी सा जीवन जीने लगती है। इस प्रसंग के कारण शुक्ल जायसी की भूरी-भूरी प्रशंसा इन शब्दों से करते हैं - ''अपनी भावुकता का बड़ा भरा परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरह दशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने केवल साधारण स्त्री के रूप में दिखती है। इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरह वाक्य छोटे-बड़े सबके हृदय को समान रूप में स्पर्श करते हैं।''[5]

हम यह भी देखने हैं कि शुक्ल की लोक-मंगल भावना जिस आदर्श पर प्रतिष्ठित है, वह मानवता ही उच्च भूमि है। इसी कारण वे मानवीयता को काव्य की श्रेष्ठ कसौटी के रूप में देखते हैं। वे जायसी के काव्य में मानवीयता के उच्च भूमि की झलक ही नहीं देखते बल्कि उनके काव्य का लक्ष्य भी मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''ऐसे समय में कुछ भावकु मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे ये कहानियाँ हिन्दुओं के ही घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है। जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी या रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।''[6] इन पंक्तियों से ही सिद्ध हो जाता है कि शुक्ल का लोक-मंगल का भाव कितना विस्तृत और व्यापक है।

जायसी को प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के सबसे सशक्त एवं समर्थ कवि के रूप में माना जाता है। शुक्ल ने जायसी द्वारा किए गए प्रेम वर्णन का बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करते हुए अपने आलोचकीय विवेक के बल पर यह बताया कि जायसी कई मायने में अन्य प्रेमाख्यानक कवियों से भिन्न व श्रेष्ठ हैं। वैसे शुक्ल मानते हैं कि जायसी ने पद्मावत में जिस प्रेम का वर्णन किया है वह प्रेम का चौथा प्रकार है। यहाँ हमें यह जान लेना आवश्यक है कि शुक्ल के अनुसार प्रेम चार प्रकार का होता है, यथा -

क. वह प्रेम जो आदिकाव्य रामायण में दिखाया गया है इसका विकास विवाह संबध हो जाने के पीछे और पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट स्थितियों में दिखाई पड़ने वाला।

ख. वह प्रेम जो विवाह के पूर्व होता है और वह विवाह में परिणीत हो जाता है।

ग. इस प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अन्तःपुर उद्यान आदि के भीतर भोग विलास सा रंग-रहस्य के रूप में होता है।

घ. वह प्रेम जो गुण श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन आदि से बैठे बिठाये उत्पन्न होता है।

ध्यान देने वाली बात है कि जायसी के प्रेमवर्णन में लोकपक्ष देखने के बाद भी शुक्ल की दृष्टि में पद्मावत एक प्रेमगाथा ही है पूर्ण जीवनगाथा नहीं। उन्होंने लिखा है कि जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच में जीवन के और अंगों के साथ प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं, इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है। उसमें भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है। पर है वह प्रेमगाथा ही, पूर्ण जीवनगाथा नहीं। ग्रंथ का पूर्वार्द्ध आधे से अधिक भाग तो प्रेम मार्ग के विवरण से ही भरा है। उत्तरार्द्ध में जीवन के और अंगों का सन्निवश मिलता है पर वे पूर्णतया परिस्फुट नहीं है। दांपत्य प्रेम के अतिरिक्त प्रेम की और वृत्तियाँ, जिनका कुछ विस्तार के साथ समावेश है, वे यात्रा, युद्ध, सपत्नी कलह, मातृस्नेह, वीरता, छल और सतीत्व है। पर इनके होते हुए भी पद्मावत को हम शृंगार रस प्रधान काव्य ही कह सकते हैं। 'रामचरित' के समान मनुष्य जीवन की भिन्न-भिन्न बहुत सी परिस्थितियों और संबंधों का समावेश नहीं है।''[7]

आचार्य शुक्ल काव्य में जिस आदर्श की माँग करते हैं उसे पद्मावत में पूर्ण रूप में कवि ने व्यक्त नहीं किया। इसके पीछे शुक्ल कारण मानते हैं कि जायसी किसी सर्वांगपूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा नहीं करना चाहते थे और उन्होंने प्रयत्न भी नहीं किया। जबकि तुलसी का लक्ष्य था 'मनुष्यत्व के सर्वोन्मुख उत्कर्ष द्वारा भगवान के लोक पालक स्वरूप का आभास देना' वहीं जायसी का लक्ष्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना जिसके द्वारा साधक अपने विशेष अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सके' अर्थात् दोनों रचना के उद्देश्य अलग थे इसलिए यह काव्यश् प्रेमगाथा ही बनकर रह जाता है; जीवन की पूर्ण गाथा नहीं बन पाता।

यह कहना अस्वाभाविक नहीं होगा कि लोक-जीवन में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। लोक-जीवन के प्रकृति के अंतर्गत पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, जंगल-पत्थर सब आ जाते हैं जिनके प्रयोग से लोक सुन्दर दिखता है और लोक जीवन में गतिशीलता भी आ जाती है। पद्मावत में जायसी ने प्रकृति का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। उनका मन अपने अंचल की पूरी प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ दिखाई देता है। उन्होंने उसका बहुत ही गहनता से चित्र उकेरा है। ''जायसी के गँवई संस्कार और उनका गँवई मन लोक की इन प्राकृतिक विभूतियों में रमा-रचा है। अपने अंचलकी प्रकृति से वे उसके पूरेपन में परिचित हैं और उसके एक-एक रग रेशे को पूरी तन्मयता में उभारते हैं।''[8]

यही बात शुक्ल को जायसी में महत्त्वपूर्ण लगी क्योंकि वे मानते हैं कि नागमती के विरह में वहाँ के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी व्याकुल हैं। वह अपने दुःख को उनके सामने प्रकट ही नहीं करती बल्कि उनसे निवेदन, याचना भी करती दिखाई देती है। शुक्ल ने इस संबंध में पद्मावत से पद उद्धृत करते हैं-

[3] चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 141

[4] वही, पृ. 227

[5] जायसी ग्रंथावली, सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.59

[6] वही, पृ. 27

[7] वही, पृ. 48

[8] भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य-शिवकुमार मिश्र, पृ. 131

पिउ सौं कहेउ संसेसड़ा हे भौंरा! हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्हलाग।।

जायसी ने प्रकृति को एक साथी-सांगिनी के रूप में वर्णित किया है जिनका जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शुक्ल यह मानते हैं कि इस प्रकार प्रकृति का वर्णन भारतीय साहित्य की एक परंपरा रही है। वाल्मीकि और कालिदास ने इसका प्रयोग अनूठे ढंग से किया है। उस परंपरा का पूरा निर्वाह जायसी ने भी किया है जिसमें 'नागमती के आँसुओं से सारी सृष्टि भीगी हुई जान पड़ती है' नागमती के विरह को कवि की इन पंक्तियों से समझ सकते हैं-

कुहुकि कुहंकि जस कोइल रोई।
रकत आँसु घुँघची बन बोई।।
जहँ जहँ ठाढ़ी होइ बनवासी।
तहँ तहँ होई घुँघची के रासी।।
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ।
गूँजा गुजि करै, 'पिउ पिऊ'।।
तेहि दुख भए परास निपाते।
लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू।
परवार पाक, फाट हिय गोहूँ।।

विरह में नागमती की जो दशा हो गयी है और जिस तरह वह विलाप करती है उस विलाप में कितनी करुणा होगी कि उसको सुन कर एक पक्षी उससे पूछ ही बैठता है कि 'क्या दुःख है कि रात में भी तेरी आँख नहीं लगती है?'

फिरि-फिरि रोव, कोई नहीं डोला।
आधी रात विहंगम बोला।।
तू फिरि-फिरि दाहै सब पाँखी।
केहि दुख रेनिन लावसि आँखी।।

जब वह किसी से सहानुभूति पाती है तो अपने दिल की सारी बातें कह देती है उसे इस बात की परवाह नहीं कि वह किसके सामने अपने हृदय के भाव को व्यक्त कर रही है। उसे सब अपने लगने लगते हैं। अर्थात् उसका हृदय सबसे जुड़ जाता है।

जायसी ने जिस प्रकार से प्रकृति के साथ हृदय को बाँधा है वह अद्भुत है। वही मनोहरता शुक्ल के हृदय को बाँधती है। यहाँ हम देखते हैं कि मानव हृदय के साथ प्रकृति पूरी तरह से जुड़ी हुई है। अर्थात् रानी नागमती का दुःख दिखाई पड़ती है। यहाँ व्यक्ति विशेष न रहकर सामान्य-जन हो जाता है। रानी नागमती विशेष होते हुए भी सामान्य-जन की तरह जीवन जीने लगती है। नागमती की वियोग दशा का विस्तार केवल मनुष्य जाति तक ही नहीं पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों तक दिखाई पड़ता है।[9]

इसी क्रम में वे लिखते हैं - ''जायसी ने जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में पशु-पक्षियों से सहानुभूति प्राप्त करने की संभावना की है, उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में सहानुभूति के संचार की भी उन्होंने सामान्य हृदय तत्त्व की सृष्टिव्यापिनी भावना द्वारा मनुष्य और पशु-पक्षी सबको एक जीवन-सूत्र में बद्ध देखा है।''[10]

[9] जायसी ग्रंथावली, सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 56

[10] वही, पृ. 56

जायसी ने वियोग वर्णन में बारह मासे का प्रयोग किया है। ऐसा माना जाता है कि ''उन्होंने प्रकृति तथा सामाजिक जीवन के क्रम में अपने को एकदम उन्हीं वर्णनों तक सीमित नहीं रखा है जो प्रायः बारह मासे में मिलते चले आ रहे हैं, कहीं-कहीं उनका निरीक्षण लोक-जीवन की बड़ी यथार्थ झाकियों को सामने लाया है।''[11]

हमें यहाँ शुक्ल के मर्यादावादी दृष्टि की साफ झलक दिखाई देती है। ऐसा देखा जाता है कि प्रेमकाव्यों में जो प्रेम का वर्णन होता है वह लोक से कटा होता है, लेकिन जायसी ने नागमती के प्रेम को लोक बद्ध करके देखा है इसलिए शुक्ल इस स्थल पर उनकी प्रशंसा करते हैं और लिखते हैं कि ''जायसी को हम विप्रलंभ शृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, कोमलता, जो सरलता और जो गंभीरता इनके वचनों में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।''[12]

आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पावस की शोभा अद्वितीय लगती है अर्थात् बारिश में 'ये बूँदें कौंधे की चमक में सोने' की सी लगती है -

पद्मावति चाहत; तु पाइ।
गगन सोहवन भूमि सोहाई।।
चमक बीजु, बरसै जल सोना।
दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रंगरती पीतम संग जागी।
गरजै गगन चौंकि गर लागी।।
सीतल बूँद ऊँच चौपारा।
हरियर सब देखाइ संसारा।।

जबकि नागमती विरह दशा में है इसलिए उसे ये बूँदे बाण की तरह लगती है।

बुनियादी तौर पर आचार्य शुक्ल रहस्यवाद को काव्य का हिस्सा ही नहीं मानते हैं। उन्होंने आत्मा, परमात्मा, जगत, जीव, ब्रह्मा आदि से संबंधित जितने भी चिंतन हैं उसको वे बुद्धि के क्षेत्र का चिंतन मानते हैं, अर्थात् ये जो चिंतन हैं उनका संबंध वह दर्शन से जुड़ा हुआ मानते हैं। उनका विचार है कि कविता का संबंध तो हृदय या भाव सत्ता से होता है। काव्य के अंतर्गत इस परमसत्ता से मिलने के लिए आत्मा का तड़पना और उससे एकात्म हो जाता। ये बातें कविता का हिस्सा नहीं हो सकतीं। कविता में मन के भावों को जगह मिलती है। जहाँ तक भावों का संबंध है, वे वहीं तक जाते हैं जहाँ तक का ज्ञान मनुष्य को होता है।''[13]

इस आधार प उन्होंने रहस्यवाद को खारिज किया। साथ ही उन्होंने एक और आधार लिया रहस्यवाद को खारिज करने का वह आधार है उसका भौगोलिक स्वरूप। कहने का मतलब है कि उन्होंने रहस्यवाद को अभारतीय कह कर उसका विरोध किया। वे मानते हैं कि 'भक्तिकाव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति भी बाहर से आई है अर्थात् अरब और फारस की ओर से आई थी।' कहने का तात्पर्य यह है कि रहस्यवाद को विदेशी चीज मानते थे। यह हमारे यहाँ की कविता परंपरा में नहीं थी। इसी कारण उन्होंने भक्ति कवियों के माधुर्य-भाव को भी सराहा नहीं।

आचार्य शुक्ल जायसी को रहस्यवादी मानने पर भी उन्हें इसलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि उनके अनुसार भाव क्षेत्र में जाकर भी सूफी कवि प्रकृति की

[11] भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य-शिवकुमार मिश्र, पृ. 121

[12] वही, पृ. 60

[13] वही, पृ. 144

नाना विभूतियों से भी आत्मा और परमात्मा का अनुभव करते हैं। उन्हीं के शब्दों में अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत् की एकता। दोनों मिलकर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं - सर्व खल्विदं ब्रह्म। यद्यपि साधना के क्षेत्र में सूफियों और पुराने ईसाई भक्तों दोनों की दृष्टि प्रथम पक्ष पर ही दिखाई देती है। पर भाव क्षेत्र में जा कर सूफी प्रकृति की नाना विभूतियों से भी उसकी छवि का अनुभव करते आए हैं।''[14]
वैसे आचार्य शुक्ल स्पष्ट रूप से कहते हैं कि अद्वैतवाद अपने मूल में एक दार्शनिक सिद्धांत है, कवि कल्पना या भावना नहीं है, परंतु जब वह भाव क्षेत्र में प्रवेश करता है तब वह भावात्मक रहस्यवाद में परिणत हो जाता है। इसी वजह से वे भावात्मक रहस्यवाद को स्वीकार करते हैं और साधनात्मक रहस्यवाद को अस्वीकार करते हैं। इस अस्वीकार के पीछे उनका तर्क है कि ''हमारे यहाँ का योग मार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। यह अनेक अप्राकृतिक और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने तथा साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करने की आशा देता है। तंत्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद है, पर निम्न कोटि की।''[15]
यही वह मूल बिंदु है जहाँ से वे कबीर आदि संत कवियों में भावुकता नहीं देख पाए लेकिन जायसी जैसे कवियों में उन्हें भावकुकता दिखाई दी।
आचार्य शुक्ल की दृष्टि में काव्य का महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है उसकी प्रबंध कल्पना। उन्होनें 'पद्मावत' की प्रबंध कल्पना का आकलन 'रामचरितमानस' की कसौटी पर किया। तुलसी के प्रबंध कौशल की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि तुलसीदास मार्मिक स्थलों की पहचान करने में सबसे सफल कवि हैं। जायसी का मूल्यांकन करते समय भी यही कसौटी उन्होंने रखी। वे लिखते हैं कि ''प्रबंध काव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है उसमें घटनाओं की संबंध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ दृश्य को स्पर्श करने वाले उसे नानाभावों का रसात्मक कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए।''[16] उन्होंने जायसी का प्रबंध-योजना को समझने के लिए दो विभाग किए- 1. इतिवृत्तात्मक, 2. रसात्मक।
यहाँ आचार्य शुक्ल का इतिवृत्तात्मक से तात्पर्य है सहायक प्रसंग जो सहज ही आते-जाते रहते हैं, जो मनुष्य की रागत्मिक प्रकृति का उद्बोधन कर सकते हैं।''[17] और रसात्मक से तात्पर्य है घटनाओं के भीतर सुख-दुःख अर्थात् जीवन की पूर्ण दशाओं का समावेश। उन्हीं के शब्दों में - ऐसी रसात्मक कहानियों का घटनाचक्र ही ऐसा होता है जिसके भीतर सुख-दुःख पूर्ण जीवन दशाओं का बहुत कुछ समावेश रहता है।''[18] जैसा कि हमें ज्ञात है कि आचार्य शुक्ल ने 'पद्मावत' को प्रेमकाव्य ही माना और वो भी सूफी काव्य परंपरा पर आधारित जिसके फलस्वरूप उसमें उन्हें जीवन-दशाओं और मानव संबंधों की अनेकरूपता नहीं दिखाई दी जैसा विशद चित्र 'रामचरितमानस' में दिखा। लेकिन वहीं जायसी ने जिस प्रकार से 'पद्मावत' के कथावस्तु में घटनाओं का वर्णन किया है। उसे वे एक उच्च कोटि के प्रबंध काव्य के लिए उपयुक्त मानते हैं। इसलिए वे लिखते हैं कि रसात्मकता के संचार के लिए प्रबंध काव्य का जैसा घटना चक्र चाहिए पद्मावत का वैसा ही है। चाहे इसमें अधिक जीवन-दशाओं को अंतर्भूत करने वाला विस्तार और व्यापक तत्त्व न हो, पर उसका स्वरूप बहुत ठीक है। शास्त्रीय आलोचना परंपरा में प्रबंध काव्य के लिए कथावस्तु में किसी 'कार्य' का होना महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए आचार्य शुक्ल ने भी प्रबंध-काव्य के लिए किसी महान 'कार्य' का होना स्वीकार किया। वे लिखते हैं कि ''प्राचीनों के अनुसार 'कार्य' महत्त्वपूर्ण होना चाहिए, नैतिक, सामाजिक या धार्मिक प्रभाव की दृष्टि से 'कार्य' बड़ा होना चाहिए, जैसा रामचरितमानस में रावण का वध और पद्मावत में पद्मिनी का सती होना।
आचार्य शुक्ल ने माना है कि जिस कवि में 'वस्तुवर्णन' की क्षमता होगी वह इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सफल बना देता है। उन्होंने इस संबंध में लिखा है कि - वस्तुवर्णन-कौशल से कवि लोग इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना सकते हैं। इस बात में हम संस्कृत के कवियों को अत्यंत निपुण पाते हैं। भाषा के कवियों में वह निपुणता नहीं पाई जाती। अर्थात् जायसी में वे इसका अभाव पाते हैं। उन्होंने कथा के कुछ मुख्य बिंदुओं को लिया - सिंहलद्वीप वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन, सिंहलद्वीप यात्रा वर्णन, समुद्र वर्णन, विरह-वर्णन, युद्ध यात्रा वर्णन, युद्ध-वर्णन, बारहमासा वर्णन, रूप सौंदर्य वर्णन। इन सभी चित्रों को देख कर आचार्य शुक्ल कथा का पूर्ण विकास मानते हैं। लेकिन साथ में यह भी कहते हैं कि जायसी पूर्णतः वस्तु वर्णन करने में सफल नहीं हो पाए केवल इतना ही कहकर वे छुट्टी पा गए-

है आबे कै बाटा।
विषम पहार आगम सुठि घाटा।।
बिच-बिच नदी खोह औ नारा।
ठाँवहिं ठावँ बैठ बटपारा।।

आचार्य शुक्ल जायसी के विषय में लिखा है कि ''वे बहुश्रुत थे, बहुत प्रकार के लोगसें से उनका सत्संग था।''[19] तथा आगे उन्होंने कहा कि ''जायसी को संस्कृत का ज्ञान कम था। उनका संस्कृत शब्द भण्डार बहुत परिमित है। उदाहरण के लिए 'सूर्य' और 'चंद्र' ये दो शब्द लीजिए जिनका व्यवहार जायसी ने इतना अधिक किया है कि जी ऊब जाता है। इन दोनों शब्दों के कितने अधिक पर्याय संस्कृत में है, यह हिंदी जानने वाले भी जानते हैं। पर जायसी ने सूर्य के लिए रवि, भानु और दिनअर, (दिनकर) और चंद्र के लिए ससि, ससहर और मयंक (मृगांक) शब्दों का ही व्यवहार किया है। दूसरी बात यह है कि संस्कृताभ्यासी से चंद्र को स्त्रीत्व में कल्पित करते न बनेगा।''[20] इसलिए उन पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि ''संस्कृत साहित्य का जायसी को परिचय न था। वे वन, पर्वत आदि के अनुरंजनकारी स्वरूप के चित्रण की पद्धति पतो तो कहाँ पाते? उनकी प्रतिभा इस प्रकार की न थी कि किसी नयी पद्धति की उद्भावना करके उस पर चल पड़ी होती।''[21]
आचार्य शुक्ल ने जायसी के अलंकार-निरूपण पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि जायसी ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है, हेतूत्प्रेक्षा जायसी का प्रिय अलंकार है। उन्हीं के शब्दों में - ''जायसी के सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक मिलता है। इनमें से हेतूत्प्रेक्षा जायसी को बहुत प्रिय थी। इसके सहारे उन्होंने अपनी कल्पना का

[14] जायसी ग्रंथावली, सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 136
[15] वही, पृ. 137
[16] वही, पृ. 77
[17] वही, पृ. 84
[18] वही, पृ. 79
[19] वही, पृ. 148
[20] वही, पृ. 149
[21] वही, पृ. 87

विस्तार बहुत दूर तक बढ़ाया है। कहीं-कहीं तो सारी सृष्टि को अपने भाव के भीतर ले लिया है।''[22]

इसकी विशेषता यह है कि इसमें प्रस्तुत वस्तु का उत्कर्ष दिखाने के लिए जो उपमान लायें है, उनका स्वरूप वास्तविक होता है, केवल उसका 'हेतु' (कारण) कल्पित होता है इसलिए वह पाठक की कल्पना को सहज ही ग्राह्य हो जाता है। नागमती के वियोगजन्य ताप की व्याप्ति दिखाने के लिए जायसी कहते हैं -

अस परजरा विरह कर गठा।
मेघ शाम भये घूम जो उठा।।

इस चौपाई में उपमान के रूप में लाए गए मेघ का 'श्याम' होना वास्तविक है उसके श्याम होने का कारण-विरहाग्नि से उठने वाला धुँआ-कल्पित है। ऐसी स्थिति में उत्प्रेक्षा विरह की अनुभूति को व्यापक बनाने में सहायक हुई है। इसके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल लिखते हैं, संदेह, विरोध, विभावना, निदर्शना, व्यतिरेक, संबंधातिशयोक्ति, परिणाम आदि अलंकारों का प्रयोग भी जायसी ने किया है। कुछ अलंकारों के उदाहरण भी उन्होंने दिए हैं-

1. निति गढ़ बांचि चलै ससि सूरू।
   नाहि त होइ बाजि रथ चूरू।। (संबंधातिशयोक्ति)
2. जीभ नाहीं पै सब किछु बोला।
   तन नाहीं सब ठाहर डोला।। (विभावन)

आचार्य शुक्ल ने जायसी द्वारा प्रयुक्त अलंकारों को साधन रूप में माना है, साध्य रूप मे नहीं। वहीं पद्मावत के भाषा के विषय में लिखते हैं कि 'अवधी की खालिस, बे-मेल मिठास के लिए 'पद्मावत' का नाम बराबर लिया जाएगा।

इस तरह हम देखते हैं कि शुक्ल ने जायसी का विश्लेषण बहुत ही गंभीरतापूर्वक किया। अभी तक के विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जायसी के मूल्यांकन में अपनी आलोचन-दृष्टि के सभी उपकरणों का प्रयोग कर जायसी को हिंदी के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में ला खड़ा किया जिसके कारण हमारे जातीय क्षेत्र (हिंदी क्षेत्र) का विकास हुआ। इसलिए हम भी डॉ. रामविलास शर्मा के आवाज में अपनी आवाज मिलाते हुए कह पाते हैं कि 'शुक्ल जी ने जायसी की भूमिका लिखकर हिंदी साहित्य के इतिहास को और शृंखलाबद्ध किया, हमारे सांस्कृतिक इतिहास के ज्ञान को और समृद्ध किया' है। अंत में कह सकते हैं कि आचार्य शुक्ल ने अपने जायसी संबंधी चिंतन के माध्यम से परवर्ती साहित्य अध्येताओं का रास्ता सुगम किया।

संदर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आलोचना के नए मानदंड-भवदेव पाण्डेय, पृ. 169
2. आलोचना अंक-73 सं. नामवर सिंह, लेख लोक मंगल और आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रघुवंश, पृ. 60
3. चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 141
4. जायसी ग्रंथावली, सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.59
5. जायसी ग्रंथावली, सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.59

[22] वही, पृ. 98